

कल्पनाएं और चाकू

प्रभात

कल्पनाएं बधना नहीं जानतीं। कल्पनाएं रुकना नहीं जानतीं। वे लगातार नया और नया रचते हुए आगे बढ़ना जानती हैं। पर चूंकि हम बच्चों के लिए कहानी लिखते वक्त इतने तरह के चाकुओं से अपने दिमाग को भयभीत रखते हैं कि कल्पना बेचारी तो किसी भी एक चाकू के वार से बेदम होकर वहीं ढेर हो जाती है। बच्चों के लिए कहानियां लिखते वक्त हम बुरी तरह भयभीत और ठस किस्म के लेखक जाने-अनजाने तरह-तरह के चाकुओं का इस्तेमाल करते हैं। हमारे पास एक चाकू होता है देशभक्ति का। जैसे ही हमारी कल्पना कुछ इधर-उधर उड़ान भरना शुरू करती है। देशभक्ति का चाकू चमचमाने लगता है। वह चाकू अपनी धार से आंखों को चुंधियाते हुए कहता है-‘ज्यादा फड़फड़ाने का नहीं। देशभक्ति के दायरे में रहने का। बच्चे को देशभक्ति नहीं सिखाई तो क्या मतलब है तुम्हारी कहानी का।’ और हम दबू ठस लेखकों का गिरोह अपनी लेखन मशीन से दनादन देशभक्तिपूर्ण कहानियां निकालने लगता है। और उन कहानियों में हम बच्चों से क्या-क्या नहीं करवा देते। छोटे-से बच्चे द्वारा उन आतंकवादियों को पकड़वा देते हैं, जिन्हें पकड़ पाने में तमाम सुरक्षा एजेंसियां प्रायः नाकाम साबित होती हैं।

एक और चाकू होता है हमारे पास माता-पिता की सेवा का। यह चाकू हमसे कहता है-‘कहानी लिखते वक्त श्रवणकुमार को ध्यान में रखने का, क्या! बच्चे के नैतिक विकास के बिना एक बेहतर नागरिक का विकास कैसे होगा भिड्डु।’ तो हम ठस लेखक क्या-क्या नहीं कर डालते। बेचारे श्रवणकुमार के तो माता-पिता अंधे थे। पर हम आंखों वाले माता-पिताओं की भी बच्चे से ऐसी सेवा करवाते हैं जैसे कि उन्हें दिखता नहीं, और दिखता है तो गलत है। नहीं दिखना चाहिए भाई, वरना कहानी में बच्चे के लिए माता-पिता की आज्ञापालन, सेवा वगैरहा का जुगाड़ कैसे होगा ?

एक और चाकू है वीरता का। यह चाकू कहानी में बच्चे से चाहता है-‘ऐ लड़के वीर बनने का। शौर्य दिखाने का। तुम्हारी उम्र ग्यारह साल हो गई। ग्यारह साल की उम्र में शिवाजी ने क्या कर दिया था मालूम! तुमको भी शिवाजी बनने का। महाराणा प्रताप बनने का। इससे कम में काम नहीं चलेगा। डरने का नहीं।’ ऐसे-ऐसे कारनामे जिनकी कल्पना मात्र से बच्चे चड्डी गीली कर दें। हम ठस कहानीकार गिरोहों की कहानियों में छोटे-छोटे बच्चे अंधेरे में घूमते भूतों का राजफाश करके रख देते हैं। हैं न हम मजेदार लेखक!

ऐसे और कई चाकू हैं जिनकी कहानी आप उपरोक्त तीन उदाहरणों को समझते हुए आसानी से गढ़ सकते हैं। तो बच्चों की कहानियां पढ़ते वक्त ऐसी बहुतेरी कहानियां मिलीं जो चाकुओं से बुरी तरह भयभीत थीं। उनकी चर्चा यहां नहीं करूंगा। कहानियां पढ़ते वक्त मुझे कुछ जीवंत कल्पनाशील कहानियां मिलीं। उनमें से दो-चार की चर्चा यहां करूंगा। एक है, जे.सी.मेहता द्वारा रचित कहानी-‘मिस्टर चिंकी’। यह पोस्ट ऑफिस में रहने वाले चूहों की कहानी है। यह कल्पना ही कितनी मजेदार है अपने आप में कि-‘दिल्ली के बड़े डाकघर में कुछ चूहे रहते थे।’ और क्या ही मजा है कि यह कोई कल्पना नहीं हकीकत है। अगर हमारी आंखें देखना चाहें।

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में एमए, हिन्दी के युवा कवि, वर्तमान में स्वतंत्र लेखन रत

पुस्तक :

पानियों की गाड़ियों में (बाल कविता संग्रह), विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं प्रकाशित

सम्पर्क :

31वीं, पुरुषार्थ नगर बी, जगतपुरा, जयपुर-25

हर कहानी में चूहे बेचारे जंगल, खेत या रसोईघर में ही क्यों होने चाहिए ? वे डाकघर ही क्यों अयोध्या मंदिर, बाबरी मस्जिद जैसी जगहों में भी रहते ही हैं। फिर हम लिखते क्यों नहीं कि अयोध्या मंदिर में महंत ही नहीं और बाबरी मस्जिद में मुल्ला ही नहीं वहां खूब सारे चूहे भी रहते थे। वही चाकू का डर। खैर। अब एक चूहा अधिक से अधिक क्या कर सकता है ? और वो भी पोस्ट ऑफिस में रहने वाला चूहा। पोस्ट ऑफिस में ही कर ले कुछ। इस बिल्डिंग के बाहर तो जा नहीं सकता। चिड़िया थोड़े ही है कि उड़ जाएगा। दिल्ली जैसी जगह में बाहर निकलेगा तो ट्रैफिक जाम में फंस जाएगा। खुद मरेगा और कहानी को मारेगा। लेखक को लिखने को रह ही क्या जाएगा! तो इस कहानी के चूहे को पोस्ट ऑफिस की इमारत में ही छोटा-मोटा कुछ ऐसा करना चाहिए कि छोटे-मोटे बच्चों के लिए छोटी-मोटी कहानी निकल जाए। ताकि बच्चों का कल्याण हो और कहानीकार उद्देश्य पूरा। मगर रुकिए जनाब! एक खुले दिमाग के लेखक का चूहा किसी चार दीवारी में कैसे कैद रह सकता है ? दिल्ली के डाकघर से चूहा पहुंचता है सीधे लंदन। बाई एअर। आखिर पोस्ट ऑफिस का चूहा है। और लंदन नहीं गया तो पोस्ट ऑफिस का चूहा होने का मतलब ही क्या है ? लंदन नहीं जाना था तो रेल्वे स्टेशन का चूहा ही न हो लेता। मगर क्यों हो लेता जबकि उसे लंदन जाना भी था और वहां से एक अंग्रेजी मेम चुहियन के हाथों से अंगूठी पहनकर शादी करके स्वदेश लौटना भी था। तो वह डाक के थैले में बंद होकर जाता है और उसी थैले में बंद होकर लंदन घूमकर वापस आता है। कहानी का अंत इन पंक्तियों के साथ होता है-

‘चिंकी आया चिंकी आया
साथ में अपनी दुलहन लाया
चिंकी की मां तुम्हें बधाई
कितनी सुंदर दुलहन आयी।’

सीबीटी से 1992 में पहली बार प्रकाशित और 1994, 1996 व 2007 में पुनर्मुद्रित इस कहानी को आप पूरी पढ़िए और उन्हें सुनाइए। वे इसे अश्लील साहित्य न कहें तो इस किताब की सौ प्रतियां मुझसे आप मुफ्त ले जाइए।

एक और दिलचस्प किताब का जिक्र मैं यहां करना चाहूंगा। वह है-‘श्रीमती ऊनवाला के अजीब स्वेटर।’ यह किताब भी सीबीटी से 2006 में छपी है व 2007 में पुनर्मुद्रित हुई है। इसे बच्चों के लिए अंग्रेजी की ख्यात लेखिका आशा नेहमिया ने लिखा है। किताब का मूल अंग्रेजी नाम है - ‘मिसेज वूलीज फनी स्वेटर।’ लेखिका की अन्य पुस्तकें ‘दादी की साड़ी’, राजा की मूछें, ‘लुढ़कता पहिया’, ‘निराली पोशाक’ आदि को पढ़कर कौन नहीं कहेगा कि ये सभी किताबें अगर एक ही लेखिका की हैं तो वह ख्यात नहीं है। और नहीं हैं तो होना चाहिए। हमें अच्छी किताबें पढ़-पढ़कर, अपने बच्चों

को पढ़वा-पढ़वाकर किताबों को सुविख्यात कर देना चाहिए। बाल साहित्य के माहौल को गरम रखने के लिए यही एक मुकम्मिल कार्यवाही हो सकती है। तो ‘श्रीमती ऊनवाला के अजीब स्वेटर’ किताब के सुबीर राय द्वारा बनाए पहले ही चित्र में श्रीमती ऊनवाला स्वेटर बुन रही हैं, मगर किसी शाम के उदास पेड़ की तरह उदास हैं। क्योंकि ‘श्रीमती ऊनवाला और उनकी बेटी अनिता ऐसे शहर में रहती थीं जो गरम था और जहां धूप खिली रहती थी। मगर उनके शहर में तो कोई भी स्वेटर नहीं पहनता था इसलिए श्रीमती ऊनवाला अधिक कमाई नहीं कर पाती थीं। इस कारण श्रीमती ऊनवाला और अनिता अपना शहर छोड़कर ऐसे शहर में रहने आ गए जहां साल भर ठंड रहती थी।’ अब कहानी में उन लोगों के हिसाब से होना तो यह चाहिए कि ‘और उसके बाद श्रीमती ऊनवाला और उनकी बेटी खुशी-खुशी रहने लगे।’ क्योंकि जो मूल समस्या थी वह तो खत्म हो ही गई। अब कहानी में बचा ही क्या ? ये ही तो उन चाकुओं का कमाल है जो कहानी को कहीं भी खत्म कर सकते हैं मगर आशा नेहमिया जैसी लेखिकाएं और लेखक ऐसे चाकुओं की परवाह नहीं करते। और इसी से उनकी कहानी की दुनिया में ऐसी-ऐसी घटनाएं सम्भव होती हैं जो हमने व हमारे बच्चों ने देखी न सुनी। तो होता क्या है कि वह ठंडी जगह श्रीमती ऊनवाला लिए कुछ ज्यादा ही ठंडी साबित होती है। प्रौढ़ा और आंखों से कमजोर श्रीमती ऊनवाला के घर में बादल घुसते-निकलते रहते हैं। अब बादलों का तो ये रोज का काम। तो क्या श्रीमती ऊनवाला स्वेटर बुने ही नहीं। ऐसा कैसे मुमकिन है। तो वे बुनती रहती हैं लगातार। परिश्रम का फल सदा ही मीठा नहीं होता। श्रीमती ऊनवाला के तमाम अनुभव के बावजूद आंखों की रोशनी कम होने और ऊपर से बादलों के द्वारा हमेशा कमरे को धुंधली नीली रोशनी से भरा रखने के चलते उनके स्वेटर अजीब बनते हैं। किसी स्वेटर में दो गले बन जाते हैं तो किसी में चार बाहें। उन लेखकों के हिसाब से तो अब भी वक्त है श्रीमती ऊनवाला परिवार वापस लौट जाए गरम प्रदेश में। क्योंकि जगह बदलने से भाग्य थोड़े ही बदलता है। और यही इस कहानी की शिक्षा, मेरा मतलब नैतिक शिक्षा भी हो जाएगी। और इसमें बच्चों की चेतना को दहशतजदा करने का पूरा बंदोबस्त भी है। कुल मिलाकर एक अच्छी कहानी बन पड़ेगी। क्योंकि बच्चों को भाग्य और ईश्वर का डर दिखाने में तो कुछ अनैतिक है ही नहीं! ईश्वर कृत संसार में उसी का डर नहीं रहेगा तो किसका रहेगा ? मगर वे सुधिजन क्षमा करेंगे, आशा नेहमिया की कहानी को इन पचड़ों में नहीं पड़ना है। उनकी कहानी को तो रचनात्मकता की उस विशाल सैरगाह से गुजरना है जहां से गुजरना सचमुच जीवन के रोमांच से भरपूर है। तो श्रीमती ऊनवाला के चार बांहों वाले स्वेटर को एक साहब अपने कुत्ते के लिए खरीद

लेते हैं। यह वह जगह है जहां वे कह सकते हैं कि यह कहानी पाश्चात्य सभ्यता की ओर ले जा रही है। तो मेरा विनम्र अनुरोध है कि हां भई ले जा रही है, अब आप कहानी को रोक सको तो रोक लो। अब इन्हें आने की इजाजत मिल गई है कोर्ट में। अब आप पूछेंगे उस दो गले वाले स्वेटर का क्या हुआ ? प्रिय पाठक पूरी कहानी में ही सुना दूंगा तो आप क्या समझते हैं सीबीटी वाले मुझे घूरेंगे नहीं ?

तो आईए अगली कहानी की ओर रुख करें। अगर कवर को अलग कर दें तो कुल आठ पृष्ठों में बमुश्किल तीन सौ अस्सी शब्दों में लिखी यह एक नन्हीं-सी सुंदर कहानी है - 'सूरज का रूमाल'। तरुण चेरियन द्वारा लिखी और अजंता गुहाठाकुरता के बहुत ही खूबसूरत चित्रकारी से सजी-धजी गुड़िया सरीखी प्यारी किताब। पहली बार 2007 में प्रकाशित हुई और उसके अगले ही बरस 2008 में इसका यह फटाफट संस्करण है। यह भी एक अनुवाद है। अजीब बात है हमारी हिन्दी में बच्चों के लिए ऐसी कहानियां क्यों नहीं हैं ? सभी पृष्ठों पर फ्लैश कट में रखे गए चित्र पर बीस फांट साइज में किताब को छापा गया है जो कि पढ़ना-लिखना सीख रहे बच्चों के लिए बिल्कुल उपयुक्त फांट साइज है। बहुत कम प्रकाशक बहुत कम मौकों पर बच्चों की किताब को छापने के मामले में सुरुचि का परिचय दे पाते हैं। हिन्दी में बच्चों के लिए एक से एक सुंदर किताबों की रचना करने वाले विख्यात रचनाकार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की किताबें छपाई के मामले में आज तक भी सुरुचि का शिकार हैं। उनकी बाल कविताओं और बाल नाटकों के संग्रह आप देखेंगे तो पाएंगे कि किस बेरहमी से उन्हें छाप दिया गया है। खराब कागज, बिना सोचा समझा फांट साइज, भरती के चित्र। कह सकते हैं खराब मुद्रण कला का एकदम उत्कृष्ट नमूना। बच्चों की किताबें प्रकाशित करते समय प्रस्तुतिकरण उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी कि खुद रचना। बाल साहित्य के अधिकांश प्रकाशक प्रस्तुतिकरण के मामले में जानबूझकर जकड़बंदी के शिकार हैं। क्योंकि यह एक मीठी जकड़बंदी है। कम से कम खर्चे में अधिक से अधिक मुनाफे की लालसा की जकड़बंदी। उनके पास किताबों के अधिक से अधिक टाइटल होने चाहिए खपाना तो उनके बाएं हाथ का खेल है। यह एक अलग किस्म का चाकू है जो बाल साहित्य के सुंदर संसार की शक्ति बिगाड़ने में लगा रहता है। शक्ति बिगाड़ने से मतलब है कि अच्छी विषयवस्तु के बावजूद ऐसी किताबें किस काम की जो बच्चों को अपनी ओर बुलाने में मरियल साबित हों। जिन्हें देखते ही बच्चे का न पढ़ने का मन करे। लेकिन कुछ प्रकाशक इस चाकू का सामना बखूबी कर रहे हैं। 'सीबीटी' लम्बे समय से यह काम कर रहा है। 'एकलव्य' की किताबों में एक खास तरह की सादगी और सुरुचि देखने को मिलती है। 'तूलिका' ने इस मामले में विशिष्ट काम करके दिखाया तो बेतहाशा कीमत का चाकू भी

साथ में रख दिया। किताब को बच्चों और उनके अभिभावकों की खरीद से दूर करने का एक अर्थ है बच्चों को बाल साहित्य से दूर रखना। और इस बात का दूसरा अर्थ है खाते-पीते सम्पन्न वर्ग के लिए प्रकाशन-गृह चलाना और हिन्दुस्तान के बच्चों की एक बहुत बड़ी तादाद की पढ़ने की ललक को उगने से पहले नष्ट हो जाने देना। इस दृष्टि से भी अगर गौर करें तो 'सूरज का रूमाल' किताब सुंदर होने के साथ ही साथ बहुत मंहगी नहीं है।

अब आते हैं वापस कहानी पर। इस कहानी में दृश्यों को पात्र बनाया गया है। सूरज जो कि हमारे दैनिक जीवन का सुपरिचित दृश्य है। इस कहानी का प्रमुख पात्र है। इसी तरह पृथ्वी पात्र है और इसी तरह संसार के सारे रंग-बिरंगे और महकते हुए फूलों की प्रतिनिधि फूलरानी एक दृश्य पात्र है।

कहानी में सूरज नाम का एक नन्हा-सा गुब्बारे सरीखा बच्चा वही सूरज है जो रोज सुबह उगता है और शाम में अस्त हो जाता है। एक बार इस सूरज बच्चे को जुकाम हो जाता है - 'बात ये हुई कि एक दिन बारिश हो रही थी और सूरज बिना-गमबूट पहने ही बाहर निकल पड़ा। थोड़ी देर में उसके पूरे पैर भीग गए क्योंकि जितने भी गड्ढों में पानी भरा था उसमें वह कूदा था...'। कूदा था और घर वापस नहीं लौटा था। माने यह कि एक बारिश भरे दिन में भी वह पानी में भीगता हुआ आगे ही आगे जाता जा रहा था। 'वह तो झरनों और पहाड़ियों पर से उछलता-कूदता हरे-भरे मैदानों को पार करता चला गया। अब उसे ठंड लगने लगी। नाक में सुरसुरी हुई। कंपकंपी होने लगी और ...आक छी।' जुकाम हो गया। होना ही था। धरती मां और फूलरानी दवादारू करती हैं। फूलरानी उसकी टपकती नाक को साफ करने के लिए ही शायद एक सतरंगी रूमाल लाकर उसे देती है। मगर एक बारिश भरे दिन में उसके सतरंगी रूमाल को देखकर एक छोटी लड़की कहती है - 'यह तो इन्द्रधनुष है जिसने बरखारानी के बाल बांध रखे हैं।' मगर कहानी के लेखक तरुण चेरियन का कहानी की पात्र उस छोटी बच्ची की बात पर विश्वास नहीं है, जो इन्द्रधनुष को बरखारानी का रूमाल समझती है। उनका कहना है (वह ऐसा समझती है तो समझने दो) 'हम और तुम तो जानते हैं न कि यह इन्द्रधनुष नहीं है ! यह तो सूरज का सतरंगी रूमाल है!'

कहानी सूरज, धरती, फूलों, झरनों, पहाड़ों के सौन्दर्य को बच्चे के भीतर जगा देती है। एक बारिश भरा दिन कितना सुंदर होता है। किस तरह से उसमें सारे दृश्य और और सुंदर होकर दिखाई देने लगते हैं। इस बात को कहानी एक प्रयास रहित, सहज, सरल और अनुपम तरीके से कह देती है। सच बात तो यह कि मेरे कहने से कोई बात नहीं बन सकती है। कहानी की ऐन्द्रिकता का आस्वाद सही मायने में तो उसे पढ़कर ही उठाया जा सकता है। ♦